वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

पूज्य श्री सौभाग्यभाईके समाधि दिन (ज्येष्ठ वदि १०) पर उनके चरणोंमें कोटीकोटी वंदन

शिष्य गुरुका उपकार व्यक्त करे और तदर्थ बंधन नमस्कार आदि भावों से विभोर हो जाय वह प्रसिद्ध है। किंतु पूज्य श्री सौभाग्यभाईकी पात्रता कैसी आश्चर्यकारक समझनी कि गुरु स्थान पर बिराजमान ऐसे कृपालुदेवने उनका उपकार गाकर वंदन और चरण स्पर्श आदि भावोंको व्यक्त किया है !!!!

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४९, अंक-३०६, वर्ष-२५, जून-२०२३

श्रावण शुक्ल ४, शुक्रवार, दि. २२-७-१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन अंश, गाथा-९७,९८ प्रवचन-४१

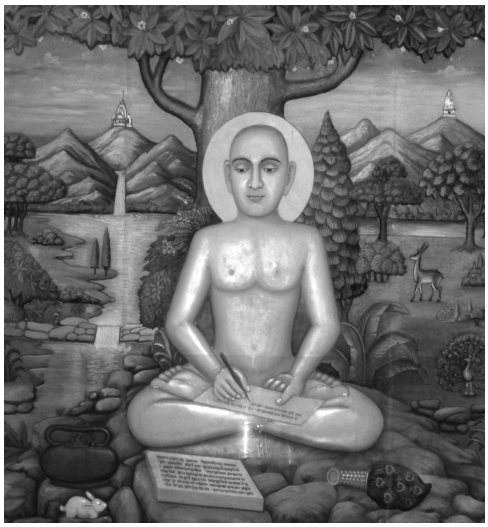

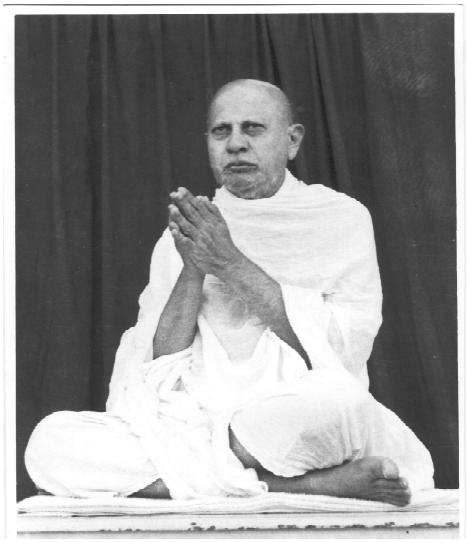

जो आत्मा का ज्ञान और वैराग्य अर्थात् राग से हट जाना, वह सुखदाता है, उसे कष्टदाता मानता है, भाई! बापू! यह करके तो देखो! पंच महाव्रत पालकर तो देखो! नग्न तो रहकर देखो! प्रतिमा धारण करके कष्ट तो सहन करके देखो! यह क्या कहते हैं? अरे! भगवान! तू क्या कहता है? भाई! यह कष्ट सहन का भाव तो आर्तध्यान हुआ, भाई! उसमें तो दु:खरूप दशा है, वह दु:खरूप दशा, मोक्ष जो पूर्ण सुख, उसे साधेगी? सुखी हुआ आत्मा सुख को साधता है। आहा...हा...! कहो, दोशी! समझ में आता है या नहीं इसमें? वहाँ मुम्बई में ऐसी सूक्ष्म बात नहीं आती, हाँ! वहाँ तो सब अमुक प्रकार की आती है। वहाँ तो दस-दस, बारह, पन्द्रह हजार लोग आते हैं, वह तो अमुक प्रकार की बात (आती है), दृष्टान्त आते हैं, अमुक आता है, बड़े शहर में कुछ दिन थोड़ा रहना उसमें... आहा...हा...!

कहते हैं, भाई! प्रभु! तेरी प्रभुता तो तेरे पास है न, भाई! उस प्रभुता में तो आनन्द की प्रभुता तेरे पास है। उसे पुण्य-पाप के रागरहित सुखी दशा प्रगट करके, आत्मा में सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र प्रगट करना, इसका अर्थ कि सुखी दशा करना; दु:ख की दशा का अभाव करके सुखी भगवान आत्मा का आश्रय लेकर सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति प्रगट करना, वह सुखरूप दशा है। वह सुखी हुआ, सुख में आया हुआ आत्मा पूर्ण सुख को साधता है। आहा...हा...! यह कहा है न इसमें? जं विंदहिं साणंदु सो सिव-सुक्खं भणंति। समझ में आया?

आत्मिकसुख का स्वाद प्राप्त करने का उपाय अपने

ही शुद्ध आत्मा में निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति करना है। तत्त्वज्ञानी को जरूर उचित है कि वह पहले गाढ. विश्वास करे कि मैं ही शुद्धसमान शुद्ध हूँ। पहले गाढ. (श्रद्धा) करे कि इन्द्र और नरेन्द्र कोई आवे और बदलावे (तो भी) तीन काल में नहीं बदले। मैं स्वयं शुद्ध आनन्दकन्द सिद्धसमान ही मेरा स्वरूप है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' ऐसा दृढ. विश्वास करके, मेरा द्रव्य कभी स्वभावरहित नहीं हुआ। मेरा भगवान, मेरा भगवान, मेरा भगवान महिमावन्त स्वभाव से खाली नहीं है। मेरा भगवान, यह वस्तु भगवान! महिमावन्त स्वभाव से भगवान खाली नहीं होता। महिमावन्त स्वभाव! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त परमेश्वरता... स्वरूप के अनन्तपने की दशा को करे, कर्म करे, शान्ति साधन स्वयं करे। ऐसे एक-एक गुण की अनन्त महिमा का धारक भगवान महिमावन्त प्रभु, उसके गुण की महिमा के स्वभाव से कभी खाली नहीं होता। यह विश्वास आये बिना उसकी ओर का झुकाव करना नहीं हो सकता। स्थिरता, समझ में आता है? चारित्र, चरना।

ऐसा अन्दर भगवान परमानन्दमूर्ति, जिसके महिमावन्त स्वभाव से कभी रहित हुआ ही नहीं। पर्याय में अल्पता, विकल्पता भले हो; स्वरूप है, वह तो पूर्णानन्द से रहित कभी नहीं होता - ऐसा जिसे अन्तर दृढ. विश्वास आया, उसे स्वरूप में स्थिरता का वह स्थान मिला। समझ में आया? वह स्थिरता का धाम मिला, यहाँ ठहरना, यहाँ रहना, जितना यहाँ स्थिर हुआ, उतना आनन्द प्रगट होगा। समझ में आया? आहा...हा...!

फिर थोड़ी लम्बी बात है। स्वानुभव की कला सम्यक्त्व होते ही जग जाती है। लो! समझ में आया? भाई! आत्मा (ने) अपने स्वभाव की रुचि की कब कहलाये? कि वह स्वभाव उसके ज्ञान में भासित हो। आत्मा का स्वभाव शुद्ध आनन्द, जिसकी ज्ञानदशा में भाव भासे, भाव भासे, तब उसका विश्वास आवे, तब उसे उसमें स्थिरता से कल्याण होगा, इस प्रकार चारित्र की दशा प्रगट होती है। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। व्यवहार की आड़ में लोगों को मार डाला है। व्यवहार के थोथे के थोथे विकल्प की जाल, उसमें मानो सब हो गया धर्म और सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण और.... है! तुम्हारे 'नागनेश' में बहुत होता है, नहीं? यह सब भी करते होंगे न? तुमने भी किये होंगे? यह भी शामिल थे न? यह मुख के सामने बैठते, सामने दुकान, जल्दी सबेरे आवें। पता है? सबेरे जल्दी चार बजे आवें... ऐसा हो जाता है परन्तु यह मूलचन्दभाई क्या करने बैठे हैं वहाँ? छोटा भाई! पता है न? छोटे भाई को तो पता होगा। 'मूलचन्द रतन', उपाश्रय के सामने दुकान.... ऊ.... करते-करते झपकी ले ले। अरे... भगवान!

आत्मा का स्वभाव... भाई! उसके ज्ञान में भाव भासित नहीं हुआ, उसका विश्वास उसे कैसे आवे? जो आत्मा का वस्तुस्वरूप है, उसका - ज्ञान का भान हुए बिना, उसके भाव का भासन, भासन कहो या ज्ञान कहो, भाई! टोडरमलजी ने भावभासन शब्द बहुत प्रयोग किया है। टोडरमलजी भावभासन शब्द बहुत बार प्रयोग किया है। उसका यह हेतु है। भावभासनरहित श्रद्धा, वह श्रद्धा नहीं है। समझ में आया? ऐसे का ऐसा मान लेना कि यह आत्मा है और यह परमात्मा सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ है तो तुझे भावभासित हुआ है? सर्वज्ञ एक समय में तीन काल, तीन लोक जानते हैं। समझ में आया कुछ? ऐसी महिमावाला ज्ञान, तुझे अन्दर भासित हुआ है? कि ऐसी अस्ति जगत में है। कब भासित हो? कि मैं भी स्वयं सर्वज्ञस्वभावी हूँ। उन्हें प्रगट हुई है, मैं सर्वज्ञस्वभावी हूँ - ऐसा सर्वज्ञ शब्द से ज्ञानस्वभाव। ज्ञान शब्द से फिर उसमें पूर्ण। अपूर्ण होता ही नहीं, वह ज्ञानस्वभाव अर्थात् सर्वज्ञस्वभाव। ऐसे स्वभाव का ज्ञान में भासन हुए बिना, उस आत्मा की श्रद्धा भावभासन बिना सच्ची नहीं हो सकती और उसके बिना चारित्र नहीं हो सकता। समझ में आया? लो!

सम्यग्दृष्टि को स्वानुभव करने की रीति मिल जाती है। इस ओर है। धर्म की दृष्टि हुई, तब उसे कला हाथ में लग गयी कि यह अनुभव ऐसे करना। एक बार मार्ग देखा हो न तो दूसरी बार उसे सरल पड़ता है। धवल में आता है न? भाई! 'दीठमग्गे' - ऐसा शब्द बहुत आता है।

धवल की टीका में वीरसेनस्वामी कृत टीका में 'दीठमग्गे' (अर्थात्) देखे हुए मार्ग में ज्ञानी जाता है। अज्ञानी भी देखे हुए मार्ग में जाता है। विपरीत श्रद्धा और विपरीत मान्यता के मार्ग में वह चला जाता है। समझ में आया? 'दीठमग्गे' जिसने भगवान आत्मा की केडी (पगडण्डी) ली है, केडी समझे न? यह रास्ता, पैदल की पगडण्डी होती है न पगडण्डी। यह... पगडण्डी गयी। ऐसे धर्मी के ज्ञान में आत्मा के स्वभाव का भान होने पर उसका मार्ग दिखा है कि इसमें स्थिरता से शान्ति मिलती है। इसलिए उसने देखे हुए मार्ग में वहाँ रमता है। आहा...हा...! समझ में आया? गाथा में इतना भरा है, इतना भरा है!! समझ में आया?

कहते हैं, आत्मवीर्य की कमी से सर्व ही सम्यक्त्वी ऐसा नहीं कर सकते तब शक्ति के अनुसार गृहस्थी में यदि रहते हैं तो.... पूर्ण आनन्द और सन्तपना प्रगट न कर सके तो गृहस्थाश्रम में रहकर भी समय निकालकर आत्मानुभव के लिए सामायिक का अभ्यास करते हैं। देखो, सामायिक का अभ्यास आया है। सामायिक है न यह? समाधि है न यह? गृहस्थाश्रम में भी मुनि जितना समय उसे नहीं मिले तो आत्मा के अन्तर अनुभव की धारा के मार्ग में जाना - ऐसा थोड़ा समय निकालकर सामायिक में वह समय निकालता है। समझ में आया? सामायिक का अभ्यास करता है... समय निकालकर आत्मानुभव के लिए सामायिक का अभ्यास करता है। फिर बहुत बात की है।

तत्त्वानुशासन में कहते हैं - समाधिभाव में तिष्ट कर जो ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव न हो तो उसके ध्यान नहीं है। 'तत्त्वानुशासन' में; तत्त्व-अनुशासन शिक्षा। भगवान आत्मा... कहते हैं कि उसका ध्यान करे और उसे आनन्द न आवे तो वह ध्यान ही नहीं है। जो वस्तु आनन्दमूर्ति है, उसमें एकाग्र हुआ - ऐसा कहना और फिर आनन्द न आवे! वह मिथ्या (है)। ध्यान करते हैं, ध्यान करते हैं (- ऐसा बहुत से कहते हैं)। इसका ध्यान? आत्मा का। आत्मा का? आत्मा क्या है? क्या कहा भाई! भाई! राग का ध्यान कर तो राग का स्वाद आयेगा; उसका आकुलता का स्वाद आये बिना नहीं रहेगा परन्तु उस आकुलता की इसे तुलना नहीं है। मिंडवनी अर्थात् तुलना। यह आनन्द है और (यह) आकुलता है। इस आनन्द को देखे तो उसके साथ मिलान करे कि यह आकुलता है। एक माल देखा हो तो दूसरे माल के साथ मिलान करे कि यह बाजरा... क्या कहलाता है? मूँग के दाने जैसा। बाजरा होता है न, रोटी (होती है)। यह मूँग के दाने जैसा, ज्वार मोती के दाने जैसी, ऐसी सब बनियों की भाषा होती है। देखो, मूँग के दाने जैसा बाजरा है। चेतनजी! ज्वार होवे तो मोती के दाने जैसी कहें परन्तु वह अच्छी दिखती हो तो किसी के साथ मिलान करते हैं कि यह मोती के दाने जैसी ज्वार है (और) यह ज्वार वैसी नहीं है, भाई!

इसी प्रकार आत्मा को आनन्द का स्वाद दृष्टि में आया हो तो रागादि आकुलता है - ऐसे उसके साथ मिलान करे, आहा...हा...! यह आकुलता है, यह आनन्द की जाति नहीं है परन्तु जिसे आनन्द का ही जहाँ पता नहीं है, उसे यह आकुलता है - ऐसा किसके साथ मिलान करेगा? यह आकुलता ही उसका सर्वस्व स्वरूप मानेगा। समझ में आया?

समाधिभाव में... यह तत्त्वानुशासन का श्लोक है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव न हो और वह ध्यान करे... सब करते हैं न, कितने ही अन्यमत में? ॐ... ॐ... ॐ.... बापू! यह ध्यान नहीं है। यथार्थ ध्यान तो उसे कहते हैं कि जो आत्मा वस्तु सर्वज्ञ ने देखा और है, वह तो आनन्दमय है, ऐसे अनन्त गुणवाला है, क्योंकि आनन्द है, उसकी रुचि है, उसका ज्ञान है, उसका वीर्य है, उसकी स्थिरता है, अस्तित्व है, वस्तुत्व है, प्रमेयत्व है, ज्ञान में ज्ञात हो - ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड है। ऐसे आत्मा का यदि ध्यान हो और अतीन्द्रिय आनन्द न आवे तो वह ध्यान भी झूठा-मिथ्या है। कुछ कल्पना से मानता है कि मैं ध्यान करता हूँ।

(एक कहता है) पीला दिखा... एक व्यक्ति पूछता था, नहीं? एक प्रतिमाधारी था, एक था न? भाई था न? चिदानन्दजी! यहाँ दो तीन बार रहे थे न? हाथवाले नहीं?

वे चिदानन्द, हाथ ऐसा था न! उनके साथ एक प्रभुजी थे। उनका नाम प्रभु, फिर यहाँ आये। सात प्रतिमाधारी, नाम प्रभुजी। पानी लेकर आये हों और... सिर पर लेकर आवें, सात प्रतिमाधारी.... फिर उनसे पूछे कि आत्मा कैसा? तो कहे लाल। आत्मा लाल है। शाम को एक आर्यिका आयी थी, बहुत थकी हुई (थी)। वहाँ किसी ने पूछा होगा, यहाँ तो आत्मा की बात है। आत्मा कैसा? पहले हो लाल और फिर दिखे सफेद। आर्यिका थी। फिर थक गये। पट्टी-बट्टी रखे, पानी तो पीवे नहीं, छाछ समझे, मट्ठा, लू बहुत लगी थी, ऐसे कहीं से शाम को चलते हुए आये, ऐसी गर्मी लगे, पानी पीवे नहीं, छाछ ले नहीं। (लोग कहें) परीषह सहन किया। आर्तध्यान है बापू! उसे पूछा तब कहे, आत्मा पहले लाल हो फिर सफेद। आहा...हा...! अभी तो आत्मा का पता नहीं पड़ता और यह प्रतिमाएँ और व्रत और वहाँ चढ.गये थे।

(यहाँ) कहते हैं, भाई! जिसे ऐसा है कि हम ध्यान, धर्मध्यान करते हैं... ऐसा तो लोग कहते हैं या नहीं। हम धर्मध्यान करते हैं तो धर्मध्यान की व्याख्या क्या? धर्म ऐसा जो आत्मा का त्रिकाली स्वभाव, उसका ध्यान। अत: उसके ध्यान में यदि एकाग्र हुआ हो तो ध्यान (है)। उस एकाग्रता में यदि अतीन्द्रिय आनन्द न आवे तो वह ध्यान ही नहीं है। समझ में आया? लो! वह मूर्च्छावान अथवा मोही है। आचार्य कहते हैं, हाँ! तत्त्वानुशासन... तत्त्वानुशासन किसका है? रामसेनजी का है।

यहाँ कहते हैं.... इस बात में न्याय है, श्लोक लिखा है, देखो -

समाधिस्थने यद्यात्मा बोधात्मा नाऽनुभूयते।
तदा न तस्य तद्ध्यानं मूर्छावान्मोह एव स:।। १६९।।

तदेवानुभवँश्चायमेकाग्र्य परमृच्छति।
तथात्माधीनमानन्दमेति वाचामगोचरं।। १७०।।

दिगम्बर मुनियों ने, सन्तों ने तो बहुत संक्षिप्त में बहुत माल भर दिया है। मूल सत्ता को स्थिरता द्वारा, चारित्र के द्वारा अनुभव किया है। आहा...हा...! समझ में आता है न? और शाश्वत् मार्ग जो था, उस मार्ग को स्वयं स्वत: अनुभव किया है। ऐसी संक्षिप्त में बात की है। चारित्रसहित में रहनेवाले इसलिए आहा...हा...! कहते हैं, जिसे आत्मा का धर्मध्यान कहते हैं, उस धर्म के ध्यान में यदि आत्मा को आनन्द न आया हो तो उस प्राणी को मूर्च्छावान और मोही कहते हैं। कहीं मूर्च्छित हो गया है, इसलिए यहाँ आनन्द नहीं आता है। आहा...हा...! समझ में आया? कहीं अर्पित हो गया लगता है। घर की स्त्री ऐसी पद्मनी जैसी हो परन्तु प्रेम न लगता हो, तब फिर उसे घर की स्त्री को शंका हो जाती है, कहीं इसका मन अन्यत्र रमता लगता है। अन्यत्र कहीं है, यहाँ मन नहीं लगता। पहचान ले, फिर उसे द्वेष हो जाये, हाँ! उसे पता पड़े कि यह साथ में है। जगत् में ऐसा रिवाज है।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, परमात्मा आनन्द की मूर्ति प्रभु है और उसका यदि यह ध्यान किया हो और आनन्द न आवे तो वह कहीं मूर्च्छित हो गया है। कहीं पुण्य और पाप के प्रेम में फँस गया है। आहा...हा...! किसी शुभ-अशुभ वृत्ति या किसी विकल्प में फँस गया है। यदि फँसा न होता तो धर्मध्यान तो जिसका ध्यान करे उसमें तो आनन्द है उस ध्यान में आनन्द क्यों नहीं आयेगा? समझ में आया?

यह तो तत्त्वानुशासन है न? जब ध्यान करते हुए आत्मा का अनुभव प्रगट होता है, तब परम एकाग्रता मिलती है तथा तब ही वह वचनों से अगोचर आत्मीक आनन्द का स्वाद आता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीनों ही वास्तव में ज्ञान की प्रगट दशा है। ज्ञान के साथ आनन्द भी है, इसलिए ज्ञान के साथ आनन्द भी तीनों में साथ है। समझ में आया? इसलिए कहते हैं, जिसने आत्मानुभव-स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और अनुभव स्थिरता प्रगट की तब परम एकाग्रता मिलती है... तब अन्तर एकाग्रता है। तब ही वह वचनों से अगोचर आत्मीक आनन्द का स्वाद भोगता है। यह ९७ (गाथा पूर्ण) हुई।

(प्रवचन का शेष अंश अगले अंकमें)

सौभाग्यमूर्ति पूज्यश्री सौभाग्यभाई के प्रति सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा गुण संकीर्तन

परम महात्मा पू. श्री सोभाग्यभाई महात्मा श्रीमद् राजचंद्रकी भक्तिमें एकलयसे रहे थे । एसी जो उनकी उत्कृष्ट भक्ति मुमुक्षु जीव के लिए आदर्शरुप है । जिस पराभक्तिसे गोपांगनाएं वासुदेवकी भक्तिमें रही थी और जिस भक्तिके कारण आत्मा परमात्मामें एकरुप हो जाए ऐसी पराभक्ति उनको प्राप्त थी । उनमें आत्मार्थीता, सरलता, लधुता आदि अनेक गुण थे । तथापि उपरोक्त पराभक्तिवशात् ÐH${d{e ï >JW ¶h Wn{H$“ ज्ञानीके मार्ग उपर चलनेका उनका अद्‌भुत निश्चय” देखकर कृपालुदेवने इस खास गुण के प्रति (पत्रांक – ७८३में) मुमुक्षुओंका ध्यान खींचा है । उनको प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञानी कृपालुदेव और परमात्मामें अंतर ही नहीं था । ऐसी सम्यक्‌प्रतीति पूर्वक कृपालुदेवके प्रति उनको अचल प्रेम था । जिसके कारण अंतमें वे ज्ञानदशाको प्राप्त हुए और इस भवके अंतिम कुछ ही गिनतीके दिनोंमें अनंत भवका छेदक सम्यक्‌त्व प्राप्त करके एक भवमें अनंत भवकी कमाई कर ली ।

पू. श्री सौभाग्यभाईके जीवन परिचयके विषयमें संक्षेपमे उल्लेखनीय है कि उनकी आर्थिक स्थिति बहोत नाजुक थी कि जिस स्थितिमे सामान्य मनुष्यको तो अनुकूल संयोगोंकी प्राप्ति करनेमें ही पूरी जिंदगी व्यतीत हो जाय । फिर भी उनकी आत्म कल्याणकी अभिलाषा असाधारण थी जो किसी भी मुमुक्षुके लिए गवेशणीय है ।

परम कृपालुदेवकी भेंट होनेके बाद उनके प्रत्यक्ष समागममें रहेनेके लिए उनकी आत्मा हंमेशा चिंतित रहा करती थी । और इन छ–सात वर्षकी अंतिम आयुके दौरान वे ५६० दिन भिन्न भिन्न स्थानमें प्रत्यक्ष समागममें रहे थे । यह कह सकते हैं कि कृपालुदेवका प्रत्यक्ष समागम यह उनके जीवनकी एक परिणती बन गई थी । और कोई भी दिन ऐसा नहीं छूटा होगा कि उनको कृपालुदेवका स्मरण नहीं हुआ हो । कृपालुदेवमें ही उनका जीव लगा रहता था और वही उनकी परिणतीकी भजना थी । अंतिम अवस्थामें उन्होंने जो भाव व्यक्त किये थे वह उनकी पात्रताकी चरमसीमाको दर्शानेवाले है । उन्होंने कृपालुदेवको लिखा था कि ‘अब रोगके कारणसे मेरी देह नहीं छूटेगी किंतु आपके वियोगकी वेदनासे देह छूटेगी’! इसके पहेले उन्होंने अनेक पत्रोंमें अनेक प्रकारसे सायला पधारने हेतु विनंती की थी किंतु ऐसा लगता है कि वियोगकी वेदना तीव्र होने के लिए ही वे सायला आने में देर करते रहे । जब पू. श्री सौभाग्यभाईके अंतिम हदके पात्रताके परिणाम देखे कि शीघ्र ही वे प्रत्यक्ष दर्शन के लिए आ पहोंचे और वहाँसे

'बीजज्ञान' देने के खास प्रयोजनार्थ उनको ईड़र ले गये । जिसके फलस्वरुप इडरसे आने के बाद उनको निर्विकल्प परमार्थ भवछेदक सम्यक्दर्शनकी-आत्म साक्षात्कारकी प्राप्ति हुई थी ।

उनकी पात्रता विशेषके लिए शब्द ढूंढने पर भी मिलते नहीं है । परंतु कृपालुदेवके शब्दोमें वे उनके लिए 'पेट देने योग्य' थे । कितने ही प्रसंग उनकी असाधारण और अचिंत्य पात्रताके संकेतरूप है । जैसेकि :

(१) जिनके प्रथम मिलनसे कृ. देवको आत्मज्ञानके बीजभूत ज्ञानकी स्मृति हुई, जागृति हुई । और थोडेही दिनों में आत्म साक्षात्कार हुआ । जीसकी आत्मा में ऐसा अद्भुत और आश्चर्यकारी निमितत्त्व हो उनकी पात्रताके लिए क्या कहना ? बास्तवमें एसी सुयोग्यता वचनातीत है।

(२) गुरु स्थान पर बिराजमान ऐसे कृ. देव उनके सत्संगको चाहते थे, कि जिससे उस सत्संगके योगमें स्वयंके आत्मगुण आविर्भाव होते थे ।

(३) उनकी पात्रता विशेषको लक्ष्यमें रखकर अनेक पत्र लिखते वक्त गुण वाचक संबोधन लिखे हैं जो निम्न रूपमें है ।

* सन. १९४६ के पत्रोमें : 'आत्मविवेक संपन्न', 'सौभाग्यमूर्ति सौभाग्य.'

* सन. १९४७ के पत्रोंमें : 'परम पूज्य केवलबीज संपन्न', 'सर्वोत्तम उपकारी', 'परम पूज्यश्री', 'जीवनमुक्त', 'सौभाग्यमूर्ति', 'महाभाग्य', 'शांतमूर्ति' , 'परम विश्राम', 'स्वमूर्तिरूप सौभाग्य.'

* सन. १९४८ के पत्रोंमें : 'स्मरणीय मूर्ति', 'हृदयरूप', 'आत्मस्वरूपरूप हृदयरूप विश्राममूर्ति', 'स्मरणरूप', मुमुक्षु पुरुषोंको अनन्य प्रेमसे सेवन करने योग्य, परम सरल, और शांतमूर्ति ऐसे श्री 'सुभाग्य', 'मुमुक्षु जनको परम हितस्वी, सर्व जीव प्रति परमार्थ करुणादृष्टि है जिनकी ऐसे निष्काम, भक्तिमान श्री सुभाग्य.'

* सन. १९४९ के पत्रोंमें : 'मुमुक्षुजनके परम विश्रामरूप', 'मुमुक्षुजनके परम बंधव, परम स्नेही श्री सोभाग.'

* सन. १९५० के पत्रोंमें : 'मुमुक्षुजनके परम हितस्वी, मुमुक्षु पुरुष श्री सोभाग', 'सत्संग योग्य, परम स्नेही श्री सोभाग', 'पूज्यश्री.'

* सन. १९५१ के पत्रोंमें : 'उपकारशील', 'आर्यश्री', 'शाश्वत मार्ग नैष्ठिक', 'सत्संग नैष्ठिक', 'परमार्थ नैष्ठिकादि गुण संपन्न', 'परमार्थ नैष्ठिक', 'आत्मार्थी.'

* सन. १९५२-५३ के पत्रोंमें : 'परम नैष्ठिक, सत्संग योग्य, आर्यश्री सोभाग', 'आत्मनिष्ठ, 'परम उपकारी आत्मार्थी, सरलतादि गुणसंपन्न श्री सोभाग!'

(४) वचनामृत ग्रंथमें, मुमुक्षु जीव के लिए प्रयोजनभूत ऐसा अद्वितीय तत्त्व जो कृपालुदेवके हृदयमें भरा था वह पू. श्री सौभाग्यभाईकी पात्रतावशात् प्रसिध्द हुआ और उस समयके और भविष्यके आत्मार्थी जीवों पर अनंत उपकार हुआ । अत: तत्त्व निरुपणार्थ कृपालुदेवका मुमुक्षु जगत पर जितना उपकार है उतना ही उपकार पू. श्री सौभाग्यभाईका है ।

(५) शिष्य गुरुका उपकार व्यक्त करे और तदर्थ बंधन नमस्कार आदि भावों से विभोर हो जाय वह प्रसिध्द है । किंतु पू. श्री सौभाग्यभाईकी पात्रता कैसी आश्चर्यकारक समझनी कि गुरु स्थान पर बिराजमान ऐसे कृपालुदेवने उनका उपकार गाकर वंदन और चरण स्पर्श आनदि भावोंको व्यक्त किया है !!! जो निम्न रूपमें है :

"…..हे श्री सोभाग ! तेरे सत्समागमके अनुग्रहसे आत्मदशाका स्मरण हुआ, उसके लिये तुझे नमस्कार करता हूँ ।" (संस्मरण पोथी - २/२० - पृष्ठ - ८४०)

"…..आपकी सर्वोत्तम प्रज्ञाको नमस्कार करते हैं। कलिकालमें परमात्माको किन्ही भक्तिमान पुरुषों पर प्रसन्न होना हो, तो उनमेंसे आप एक हैं । हमें आपका बड़ा आश्रय इस कालमें मिला और इसीसे जीवित हैं ।" (पत्रांक २१५ - पृष्ठ - २७३)

"…..वेदनाके समय साता पूछनेवाला चाहिये, ऐसा व्यवहारमार्ग है परन्तु हमें इस परमार्थमार्गमें साता पूछनेवाला नहीं मिलता; और जो (पू. श्री सौभाग्यभाई) है उससे वियोग रहता है । तो अब जिसका वियोग है ऐसे आप हमें कीसी भी प्रकारसे साता पूछें ऐसी इच्छा करते हैं ।"

(पत्रांक - २४४ - पृष्ठ २८७)

"…..आपने हमारे लिये जन्म धारण किया होगा, ऐसा लगता है । आप हमारे अथाह उपकारी हैं । आपने हमे अपनी इच्छाका सुख दिया है, इसके लिये हम नमस्कारके सिवाय दूसरा क्या बदला दें ? परन्तु हमें लगता है कि हरि हमारे हाथसे आपको पराभक्ति दिलायेंगे; हरिके स्वरूपका ज्ञान करायेंगे, और इसे ही हम अपना बडा भाग्योदय मानेंगे।" (पत्रांक - २५९ - पृष्ठ - २९६)

"…..आपका समागम अधिकतासे चाहता हूँ । उपाधिमें यह एक अच्छी विश्रांति है । कुशलता है, चाहता हूँ ।" (पत्रांक - १३३ - पृष्ठ - २२८)

"अपूर्व स्नेहमूर्ति आपको हमारा प्रणाम पहुंचे । हरिकृपासे हम परम प्रसन्न पदमें हैं । आपका सत्संग निरंतर चाहते है ।" (पत्रांक - २५५ - पृष्ठ - २९२)

"…..चित्त बहुत बार आपमें रहा करता है । जगतमें दूसरे पदार्थ तो हमारे लिये कुछ भी रुचिकर नहीं रहे हैं ।" (पत्रांक - ३५७ - पृष्ठ - ३३२)

"…..एक आत्म वार्तामें ही अविच्छिन्न काल रहे, ऐसे आप जैसे पुरुषके सत्संगके हम दास हैं । अत्यन्त नम्रतासे हमारा चरणके प्रति नमस्कार स्वीकार कीजिये। यही विनंती ।" (पत्रांक - ४५३ - पृष्ठ - ३८२)

कृपालुदेवके समागममें अनेक भक्तरत्न आये थे उनमें पू. श्री सौभाग्यभाई भक्त शिरोमणी थे ये कहनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है । और इसीलिये कृ. देवकी स्पष्ट आज्ञा अनुसार "श्री सौभाग्य मुमुक्षुको विस्मरण करने योग्य नहीं है ।" इस प्रकारकी आज्ञा करके गये हैं । तदनुसार कृपालुदेवके अनुयायी मुमुक्षु समाजको उनकी मुख्यता करनी घटित है । इस आज्ञाका उल्लंघन-अवगणना होना उचित नहीं है ।

"श्री सुभाग्य प्रेमसमाधिमें रहते है ।" (पत्रांक - ३०६) कृपालुदेवके इस वचन अनुसार पू. श्री सौभाग्यभाईका प्रेम, साधककी समाधिके स्थान पर था, ऐसा स्पष्टरूपसे सूचित होता है । उस परसे पू. श्री सौभाग्यभाईका परिणमन बोध देता है कि ज्ञानीपुरुषको पहिचानने और प्राप्त करने हेतु अथवा कृपालुदेवको पहिचानने और प्राप्त करने हेतु पू. श्री सौभाग्यभाई बनना चाहिये । और अगर ऐसी योग्यता प्राप्त हो जाय तो निश्चित ही "ज्ञानीकी कृपादृष्टि वही सम्यक्दर्शन" की प्राप्ति हो जाय ।

परम कृपालुदेवके प्रत्यक्ष योगमें पू. श्री सौभाग्यभाईके आत्मा उपर जो उपकार हुआ वह उनके ही शब्दोमें निम्न पत्रमें प्रसिध्द हुआ है ।

सायला - जेठ - शुक्ल - १४ रवि १९५३

परम पुरुष, तरणतारण, परमात्मदेव, कृपानाथ, बोधस्वरूप, देवाधिदेव, महाप्रभुजी, सहजात्म स्वरूपकी सेवामें । बंबई ।

श्री सायलासे लि. आपका आज्ञांकित सेवक पामरमें पामर सोभाग लल्लुभाईके नमस्कार पढना ।…..

"…..देह और आत्मा भिन्न है । देह जड है । आत्मा चैतन्य है । उस चेतनका भाग प्रत्यक्ष तौर से भिन्न समजमें नहीं आता था । लेकिन ८ दिनसे आपकी कृपासे अनुभव गोचरसे दो टूक प्रगट भिन्न दिखाई देता है और रात-दिन यह चेतन और यह देह इस प्रकार आपकी कृपादृष्टिसे सहज हो गया है । यह आपको सहज जानने हेतु लिंखा है….."

उपरोक्त पत्रके अनुसंधानमें कृपालुदेवके शब्द निम्न रूपमें है ।

"…..श्री सौभागने देहका त्याग करते हुए महामुनियोंको भी दुर्लभ ऐसी निश्चल असंगतासे निज उपयोगमय दशा रखकर अपूर्व हित किया है, इसमें संशय नहीं है । इस क्षेत्रमें, इस कालमें श्री सोभाग जैसे विरल पुरुष मिलते हैं, ऐसा हमें वारंवार भासित होता है । श्री सोभागकी सरलता, परमार्थ संबंधी निश्चय, मुमुक्षुके प्रति उपकारशीलता आदि गुण वारंवार विचारणीय है ।" (पत्रांक - ७८२ - पृष्ठ - ६१६)

"मुमुक्षुको श्री सोभागका विस्मरण करना योग्य नहीं है ।"

अंतमें पू. श्री सोभागभाई के प्रति उपकार अंजलि व्यक्त करते हुए विराम लेते है ।

कृपालुदेव के प्रति अपने सर्व परिणामों की पूरी किताब खुली करके करीब हररोज़ पत्र लिखते हुए सरलतामूर्ति श्री सोभागभाई

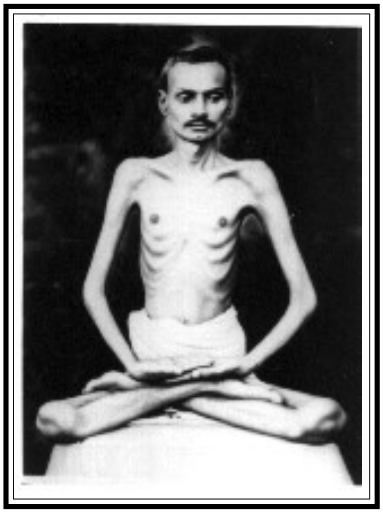

पत्रांक-७

सं १९४९, दूसरा अषाढ़ सुदि १२, मंगलवार

प्रेम पूज्य तरणतारण बोधस्वरुप परमात्मा देव साहेबजी श्री राज्यचंद्रभाई की चिरंजीवी बहुत हो ।

श्री मोरबी से लिखितन आज्ञांकित सेवक सोभागका चरण प्रति वंदन स्वीकार किजियेगा । आपका कृपापत्र इन दिनों काफि दिन से प्राप्त नहीं हुआ इसलिये मन व्याकुल रहा करता है । अत: दया करके कृपा करके पत्र लिखियेगा और जिन प्रश्नों के उत्तर की वांच्छा की है उसका समाधान भी लिखियेगा ।

कभी कभी बात पूछने की इच्छा तो होती है किन्तु आपकी ओर से उत्तर नहीं मिलता है और तो और कोई प्रश्न उठता नहीं है और उठता है तो उसका समाधान आपकी ओर से मिलता नहीं है । कबीरजी ने लिखा है कि 'जो खीले को पकड़ के रहेता है उसका कोई बाल भी बांका नहीं हो सकता'-तो मेरा भी एसा ही है । यह तो जीव को आनंद आये इसलिए कभी-कभी (प्रश्न) स्मरण आने पर लिखता हूँ । सो तो सिर्फ जानकारी हेतु, इसके अलावा विशेष कोई प्रयोजन नहीं । जानना था सो तो जान लिया ।अब कुछ जानना बाकी (नहीं रहा) । या समझो आप जैसे सामर्थवान को साक्षात् जान लिया है तो अब दूसरी कोई परवा है नहीं । जैसे गोपियों ने ओधवजी को कह दिया था कि, आपके ज्ञानमें हम न तो कुछ समझते है और नाहि हमें आपके ज्ञानकी कोई आवश्यकता भी है । अब आपकी जैसी ईच्छा हो वैसा कीजिए । चाहे तो समागम में रखिये चाहे तो दूर रखिये परन्तु हमें तो रातृ-दिन आप की ही भजना रहनेवाली है । अत: कृपा करके मेरी

इच्छा पूर्ण कीजिये । इसमें आपका तो कोई नुकसान है नहीं, विशेष क्या लिखूँ ? मेरी तरफ से चि. मनसुख का केशवलाल को यथातथ्य कहियेगा । चि. मणीलाल सायला से कल आया है । इन दिनों करीब २०० मण(२० किलो=१ मण) रूई की खरीद की है । इसका वजन करने के लिये सायला से बुलाया था सो आया है । लि. सोभाग

*

पत्रांक-१४

संवत: १९५१ कारतिक सुदि ५, शुक्रवार

प्रेम पूंज परमात्मदेव, बोधस्वरुप श्री रायचंद्रभाई वि रवजीभाई, मु. मुम्बई बंदर

श्री अंजार से लि. आपके आज्ञांकित सेवक सोभाग का चरण प्रत्ययी नमस्कार स्वीकार कीजियेगा ।

आपके दो पत्र मिले इसमें लिखी बात बहुत करके समझ सका हूँ । जिसका उत्तर कल और परसो लिखा है । इसके अलावा समझने हेतु आज एक पत्र मिला है । पढ़कर प्रसन्नता हुई आप जो सीख देते हैं वह बिलकुल सही है और आप जैसे सामर्थ्यवान का सत्संग प्राप्त है तो चाहे जैसे भी परिणाम को स्थिर करके धैर्य रखना ही है । किन्तु दूसरा कोई उपाय न दिखे तो करे भी क्या लेकिन कभी कभार तो परचा दिखाईये ! बाद में मेरी मृत्यु पश्चात मुझे क्या लेनादेना हैं । मैं उस विषय में आपसे कुछ नहीं लिखता । आपकी कृपा से मेरी प्रसन्नता बनी हुई है आप बिलकुल निश्चिंत रहियेगा और जब जरूरत दिखे तो जरूर मेरी संभाल लीजियेगा । पतिवृत्ता की भक्ति है । यही विनंति ।

मणीलाल का लिखा पत्र आज मिला है । समाचार प्राप्त हुए । त्रिकमजी की दुकान में मन लगाकर कोलाबा के काम में ध्यान देवे तो आगे जाकर जरूर फायदा होगा । आज सूरत से तार आया है । श्री कारको-२०० लेना एसा लिखते हैं । तो धीरे-धीरे लेंगे ऐसा कहियेगा । इतना ही । लि. सोभाग

*

(पृष्ठ संख्या १७ से आगे..)

उदाहरणार्थः द्रव्यानुयोग के अनुसार एक पदार्थ की सत्ता में द्रव्य के प्रदेश और पर्याय के प्रदेश भिन्न-भिन्न नहीं हैं बल्कि एक ही है; तिसपर भी अध्यात्मतत्त्व-परमपद का आश्रय करवाने हेतु अध्यात्म के प्रकरण में श्रीगुरु का स्पष्ट उपदेश है किः पर्याय के प्रदेश भिन्न हैं तथा द्रव्य के प्रदेश भिन्न हैं। वह पूर्वापर विरोध नहीं है। तथापि मति की असरलता के कारण विरोध भासित होता है जिससे आत्महित चूक जाता है।

* यह उपयोग की पारमार्थिक सरलता है कि अंतरंग में तिर्यंक् / तिरछी गति नहीं करता यानी कि बगल में रहे हुये राग को वह स्पर्श नहीं करते हुए, सरल होकर, स्वयं को ग्रहण करता है।-ऐसी सरलता उपादेय है। यदि असरलता रहेगी तो वह अंतर्मुख होने में प्रतिबंधक है अतएव परम सरलता आदरणीय है।

* संक्षेप में 'सरलता' स्व-पर कल्याणकारी है और 'असरलता' स्वयं के व अन्य के कल्याण में बाधक है। - ऐसा 'सरलता' का महत्त्व समझकर आत्महित साधना योग्य है।

ॐ शांति

*

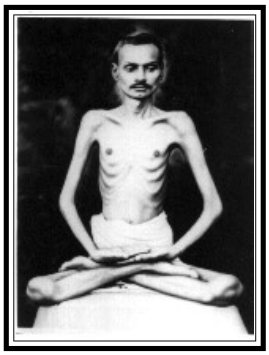

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र

आपकी सर्वोत्तम प्रज्ञाको नमस्कार करते हैं । कलिकालमें परमात्माको किन्हीं भक्तिमान पुरुषोंपर प्रसन्न होना हो, तो उनमेंसे आप एक हैं । हमें आपका बड़ा आश्रय इस कालमें मिला और इसीसे जीवित हैं ।

(पत्रांश - २१५)

*

और वारंवार यही रटन रहनेसे 'वनमें जायें' 'वनमें जायें' एसा मनमें हो आता है । आपका निरन्तर सत्संग हो तो हमें घर भी वनवास ही है । (पत्रांश - २१७)'

*

आज आपका एक पत्र मिला । पढ़कर हृदयांकित किया । इस विषयमें हम आपको उत्तर न लिखें इस हमारी सत्ताका उपयोग आपके लिये करना योग्य नहीं समझते; तथापि आपको, जो रहस्य मैंने समझा है उसे जताता हूँ कि जो कुछ होता है सो होने देना, न उदासीन होना, न अनुद्यमी होना, न परमात्मासे भी इच्छा करना, और न दुविधामें पड़ना, कदाचित् आपके कहे अनुसार अहंता आड़े आती हो तो यथाशक्ति उसका रोध करना, और फिर भी वह दूर न होती हो तो उसे ईश्वरार्पण कर देना; तथापि दीनता न आने देना । क्या होगा ? ऐसा विचार नहीं करना, और जो हो सो करते रहना । अधिक उधेड़-बुन करनेका प्रयत्न नहीं करना । अल्प भी भय नहीं रखना, उपाधिके लिये भविष्यके एक पलकी भी चिन्ता नहीं करना, चिन्ता करनेका जो अभ्यास हो गया है, उसे विस्मरण करते रहना, तभी ईश्वर प्रसन्न होगा; और तभी परमभक्ति पानेका फल है; तभी हमारा-आपका संयोग हुआ योग्य है । और उपाधिमें क्या होता है उसे हम आगे चलकर देख लेंगे । 'देख लेंगे' इसका अर्थ बहुत गंभीर है ।

(पत्रांक - २१७).

*

वेदनाके समय साता पूछनेवाला चाहिये, ऐसा व्यवहारमार्ग है; परन्तु हमें इस परमार्थमार्गमें साता पूछनेवाला नहीं मिलता; और जो है उससे वियोग रहता है । तो अब जिसका वियोग है ऐसे आप हमें किसी भी प्रकारसे साता पूछें ऐसी इच्छा करते हैं । (पत्रांश - २४४)

*

अपूर्व स्नेहमूर्ति आपको हमारा प्रणाम पहुँचे । हरिकृपासे हम परम प्रसन्न पदमें हैं । आपका gÈg§ {Za§a MhVo h¢ & (पत्रांश - २५५)

*

'ज्ञानधारा' सम्बन्धी मूलमार्ग हम आपसे इस बारके समागममें थोड़ा भी कहेंगे; और वह मार्ग

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १८ पर..)

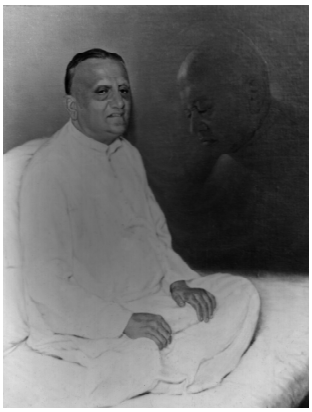

द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से पूज्य सोगानीजीके वचनामृत
विषय :- पात्रता के लक्षण

प्रश्न :- प्रथम पात्रता का क्या स्वरूप है ?

उत्तर :- अपने द्रव्य में दृष्टि को तादात्म्य करना, प्रसारना। बाह्य में तादात्म्य कर रही दृष्टि को अपने में तादात्म्य करना, यही प्रथम पात्रता है। २०.

*

योग्यता हो तो सुनते ही सीधे अंदर में उतर जाते हैं, इसलिए कहते हैं कि 'ऐसी उनकी काललब्धि'। तो अज्ञानी कहता है कि अरे, पुरुषार्थ को उड़ा दिया ! पर, अरे भाई ! पुरुषार्थ इससे जुदा थोड़े ही है ?! कोई स्वच्छंदता न कर लेवे, इसलिए 'पुरुषार्थ करना' ऐसा कहा है। त्रिकाली में अपनापन होने में पुरुषार्थ होता ही है। लेकिन यह (ऐसा पुरुषार्थ कि) पर्याय जितना 'मैं' नहीं हूँ, 'मैं तो त्रिकालीदल ही हूँ।' ११३.

*

योग्यता और पात्रता ठीक (उत्कृष्ट) होवे तो एक ही क्षण में काम हो जाये, ऐसी बात है। १८३.

*

बात सुनते ही चोट लगनी - यह भी एक पात्रता है। ४२१.

*

'मैं वर्तमान में ही परिपूर्ण हूँ' - ऐसा सुनते ही, कुछ करना - कराना है ही नहीं - ऐसा उल्लास तो प्रथम से ही आना चाहिए; और फिर उसी की पूर्ति के लिए प्रयास करना है। ४२७.

*

अपने से अपनी पात्रता मालूम हो जाती है; दूसरा कहे, न कहे - इससे मतलब नहीं है। द्रव्य स्वतंत्र है न! इसको पर की अपेक्षा ही नहीं है। ४७६.

*

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (जून-२०२३, हिन्दी एवं गुजराती) के इस विशेषांक की समर्पण राशि श्री सौरभ जैन, आगरा एवं कु. श्रुति रणधीर घोषाल, कोलकाटा की ओर से साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी विडीयो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी. १३-C

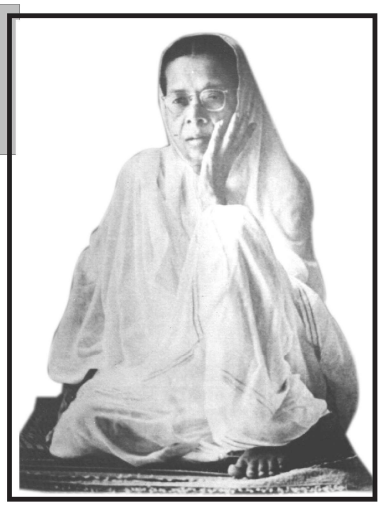

मुमुक्षु :- अंतरसे लगे उसे होता है। अर्थात् आत्मभावनापूर्वक मुझे यही करना है, यही प्राप्त करना है ऐसी भावनापूर्वक करे..

समाधान :- तो होता है। मुझे अंतर की भावनासे करना ही है, उसे कहीं रस नहीं आता, रस छूट गया है। आत्मा का ही रस लगा है। कहीं चित्त लगता नहीं, रुचि उठ गयी है। तो उसे आत्मा की रुचि लगे परन्तु पुरुषार्थ अभी मन्द है तो पुरुषार्थ करता रहे। आत्मा की रुचि लगे उसे हुए बिना रहता नहीं।

मुमुक्षु :- प्रयोग मे भी इस प्रकार से...

समाधान :- प्रयोग तो यही करना है।

मुमुक्षु :- स्वभाव को पहचानकर..

समाधान :- स्वभाव को पहचानकर मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी भेदज्ञान की धारा और द्रव्य पर दृष्टि करे तो होता है। यह एक ही (उपाय) है। उसके लिये बाह्य क्रिया करनी पड़े, अधिक अभ्यास हो तो होता है ऐसा भी नहीं है। प्रयोजनभूत द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने और दूसरा अधिक नहीं जाने तो भी होता है। अधिक उपवास करे या अधिक त्याग करे या अधिक सीखे-पढ़े तो होता है, ऐसा भी नहीं है। लेकिन अंतर का अभ्यास होना चाहिये। अंतर का अभ्यास। बाहर का अमुक हो तो होता है, परन्तु अंतर भेदज्ञान का अभ्यास समझकर होना चाहिये। बिना समझे ध्याने करने बैठ जाये। आत्मा को पहचाने बिना। बहुत कहते हैं न, ध्यान करना। पहचाने बिना ध्यान करे तो कहाँ खड़ा रहेगा? आत्मा को पहचाना नहीं? स्थिर कहाँ होगा? एकाग्र कहाँ होना आत्मा को पहचाने बिना? एकाग्रता करे तो विकल्प को मन्द करे, परन्तु मैं विकल्पसे भिन्न हूँ, आत्मा का अस्तित्व ग्रहण नहीं किया है, तो ऐसे भी नहीं होता है। आत्मा को पहचानकर कि मैं यह हूँ, फिर एकाग्रता करे तो होता है। आत्मा का अस्तित्व ग्रहण करने के बाद आत्मा में स्थिर हो। भेदज्ञान-मैं भिन्न हूँ ऐसा समझकर उसमें एकाग्रता करे तो होता है। बिना समझे ध्यान करता रहे तो भी होता नहीं।

मुमुक्षु :- अंतरसे करने का अर्थ स्वयं को पहचानकर।

समाधान :- स्वयं को पहचानकर करे तो होता है। ऐसे ध्यान भी जीवने अनन्त बार किये, किन्तु होता नहीं। क्योंकि अन्दरसे भेदज्ञान नहीं करता है। इसलिये नहीं होता।

मुमुक्षु :- पहचानना खुद को है, पहचान खुद को करनी है।

समाधान :- खुद को करनी है। खुद को ही स्वयं को पहचानना है। स्वभाव पहचानकर। यह मैं ज्ञायक हूँ, यह जाननेवाला है वह मैं हूँ, जाननेवाला है वह अनन्त गुणसे भरा शुद्धात्मा ज्ञायक है। जाननेवाले को पहचानकर यह मैं ज्ञायक हूँ, उसका अस्तित्व ग्रहणकर, यह मैं नहीं-यह शरीर मैं नहीं हूँ, ये विकल्प आये वह भी मैं नहीं, वह मेरा स्वभाव नहीं है। मैं तो एक जाननेवाला ज्ञायक हूँ। लेकिन उस ज्ञायक की महिमा लानी चाहिये, तो उसमें टिक सके।

मात्र जाननेवाला (हूँ), ऐसा बोलता रहे तो भी होता नहीं। ज्ञायक की महिमा लगनी चाहिये कि ज्ञायक कोई दिव्यमूर्ति है। उसकी महिमा लगनी चाहिये।

जैसे भगवान की, गुरु की महिमा लगे वैसे ज्ञायकदेव की भी महिमा लगनी चाहिये कि मैं तो जाननेवाला निर्विकल्प स्वभावी शुद्धात्मा (हूँ)। उसकी महिमा लगकर उसे वह पहचाने कि ये रहा ज्ञायक, ऐसे ग्रहण करे तो उसमें वह टिक सकता है। जाननेवाला यानी कुछ नहीं, रुखा ज्ञायक, ऐसे नहीं। जाननेवाले की महिमा उसे लगनी चाहिये।

मुमुक्षु :- स्वयं की महिमापूर्वक पहचानकर फिर भेदज्ञान करे...

समाधान :- तो यथार्थ होता है।

मुमुक्षु :- माताजी! गुरुदेव के वचनामृत में (आता है कि), केवलज्ञानी का विश्वास हो उसे चारों पहलुओंसे समाधान आदि रूप प्रतीति चाहिये और उसने ही, केवलज्ञानीने देखा है उसका सत्यरूपसे स्वीकार किया है। उसमें चारों पहलुओंसे अविरुद्ध प्रतीति चाहिये, उसमें क्या कहना है?

समाधान :- चारों पहलुओंसे उसे प्रतीति आनी चाहिये। केवलज्ञानीने देखा वैसा होगा अर्थात् भगवानने देखा है वैसा होगा उसका अर्थ मुझे कुछ करना नहीं है, भगवानने देखा है वैसा होगा, ऐसा मात्र समझे कि मुझे कोई पुरुषार्थ नहीं करना है, वह तो भगवानने देखा होगा वैसा होगा। उसने यथार्थरूपसे भगवान को पहचाना नहीं है। उसे चारों पहलुओंसे प्रतीति (आनी चाहिये)। आत्मा का स्वरूप क्या? निश्चयसे क्या है? व्यवहारसे क्या है? इसप्रकार चारों ओरकी द्रव्य-गुण-पर्याय की प्रतीति आकर जो भगवानने देखा वैसा होगा, उसप्रकार का उसे विश्वास है, वह उसे यथार्थ समझा है। समझे बिना मात्र भगवानने देखा वैसा होगा (ऐसा माने) वह तो स्वयं पुरुषार्थ की मन्दता के लिये बोलता है। भगवानने देखा, भगवान के ज्ञान में जैसा आया है वैसा होगा, परन्तु भगवान के ज्ञान में ऐसा ही आया है कि पुरुषार्थपूर्वक जो करे उसे होता है। जो पुरुषार्थ का निषेध करता है उसे होता ही नहीं। भगवान के ज्ञान में ऐसा आता है कि जो आत्मा पुरुषार्थपूर्वक आगे जाता है उसे ही होता है और वह ऐसे ही होनेवाला है, ऐसा भगवानने देखा है। परन्तु जिसके मस्तिष्क में निर्णय में ऐसा बैठा है कि पुरुषार्थ करना ही नहीं है। तो भगवानने ऐसा देखा है कि तो तुझे भव है। पुरुषार्थ को नहीं मानता है उसे कुछ होनेवाला नहीं है।

(तत्त्वचर्चाका शेष अंश अगले अंकमें...)

पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रवचन अब You tube पर

परम उपकारी पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रकाशित पुस्तकों के प्रवचन गुजराती एवं {hÝXr ^mfmH$ Subtitle साथ अब देखिये। You tube में Satshrut prabhavna channel पर जाकर यह प्रवचन सुन सकते हो। राज-हृदय, कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी के ग्रन्थ पर हुए प्रवचन अभी चल रहे हैं। हर रविवार सुबह ११ बजे इन प्रवचनों का जीवंत प्रसारण होता है, जिसका सर्व मुमुक्षुओं को लाभ लेने की विनती। Channel को Subscribe करने से आगामी प्रसारित प्रवचन का Notification स्वयं ही प्राप्त हो जायेगा।

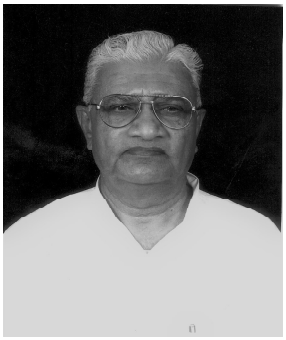

सरलता
-पूज्य भाईश्री शशीभाई

(मुमुक्षुभूमिका में आत्महित के प्रयोजन हेतु 'सरलता' अत्यंत महत्त्व का गुण है। सरलता उत्पत होने से अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न ही नहीं होते हैं। सरलता, अन्य अनेक गुण उत्पन्न होने का मुख्य कारण है। सरलता न होने से आत्महित की दिशा में बड़ा भारी अवरोध रहता है; यानी कि असरलता आत्मगुण-रोधक है। वास्तव में तो सरलता बगैर की मुमुक्षुता, शून्यवत् ही होती है।

सरलता के कारण व्यवहार और परमार्थ में अनेक प्रकार से लाभ होता है। तथा असरलता के कारण अनेक प्रकार से व्यवहार और परमार्थ में नुकसान होता है। जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से विचारणीय है:-

* सरलता से मध्यस्थता और विशालता प्राप्त होती है। जिससे सरल परिणामी जीव, किसी भी प्रसंग में अनुचितरूप से पक्षपाती नहीं होता। तथा यथार्थ विचारशक्ति के कारण, वह, मध्यस्थ भाव से रहकर, विपर्यास से बच जाता है। उसी प्रकार 'सत्' के स्वीकार करने में संकुचितता के कारण होनेवाले नुकसान से भी वह बच जाता है। विशालबुद्धि और मध्यस्थता, ये सरलता से उत्पत हुये गुण हैं।

* चार गति में सबसे अधिक जीवों की संख्या तिर्यंच गति में है। उसका कारण जीव के तिर्यक्-तिरछे, आड़े, वक्र, असरल-परिणामों का वह प्रगट फल है। जब कि मनुष्य गति में जीवों की संख्या सबसे कम होती है। तीनों काल में संख्या का ऐसा परिमाण यों सूचित करता है कि, परिभ्रमण करते जीव में सरल परिणाम से मनुष्यत्व प्राप्त करे उनका प्रमाण अति अल्प है। मनुष्यत्व की दुर्लभता देखकर 'सरलता' उपासनीय है।

* निर्दोष व पवित्र दशा प्राप्ति के अभिलाषी जीव को, सर्वप्रथम स्वच्छंदरूपी महादोष की हानि हेतु, स्वयं के दोषों का अवलोकन करना आवश्यक है। ऐसा निष्पक्ष अवलोकन, सरल परिणामी जीव ही कर सकता है। स्वदोष को मिटाने का यह एक रामबाण इलाज है। परन्तु वह सरलता बगैर साध्य नहीं है।

* सुगमता से स्वच्छंदरूपी अंधत्व से दूर होना हो, उस जीव की मति सरल होने से, वह ज्ञानी की आज्ञा से चलने की योग्यता प्राप्त करता है। यह ज्ञानदशा प्राप्ति का अद्भुत उपाय है। सरल परिणामी जीव को ज्ञानीपुरुष की आज्ञा के लिये तत्परता होती है। जिससे उसे ज्ञानीपुरुष के बोध को अवधारण करने की क्षमता प्राप्त होती है। अनेक शास्त्रों के अध्ययन और बहुत सी बाह्यक्रियाओं से जो लाभ नहीं होता वह लाभ, सरल परिणामी मुमुक्षु को ज्ञानी के मार्गपर चलने के दृढ़ निश्चय से होता है।

* जीवन में एकमात्र आत्महित का लक्ष निर्धार करना, परमार्थ प्रत्ययी सरलता है। ऐसी पारमार्थिक सरलता का महत् फल है। इस प्रकार की सरलता, अनेक प्रकार के उच्च कोटि के परिणामश्रेणि का कारण बनती है और अंततः मोक्षमार्ग की प्राप्तिपूर्वक पूर्ण पद की प्राप्ति पर्यंत पहुँचाती है।

* आत्मार्थी जीव में सरलता प्राप्त होने के कारण, श्रीगुरु के चाहे जैसे वचनो में उसे विश्वास रहता है और कहीं तनिक- सी भी शंका नहीं पड़ती। अतएव यों फलित होता है कि : सत्पुरुष के वचन में शंका हो वैसी अयोग्यता,

असरलता की द्योतक है।

* परिणाम की सरलता के कारण एक विशिष्ट प्रकार की योग्यता प्राप्त होती है जिससे कि, जीव सत्पुरुष के आशय को ग्रहण करने के लिये पात्र बनता है। ऐसी योग्यता बगैर अनेक उत्कृष्ट निमित्तों का योग मिलने पर भी 'आशय ग्रहण न होने से' जीव आत्महित से वंचित रहा है। यह परिस्थिति दर्शाती है कि असरलता से कितना बड़ा नुकसान है।

* जो जीव पक्षपातरहित होकर अपने दोष का अवलोकन करके, निषेध न करे तो उसे अपने दोष का जाने - अनजाने में बचाव होता है; तथा ऐसे प्रकार में उसे अपने दोष का गुप्त अनुमोदन वर्तता है जिससे दोष का अभाव हो नहीं सकता।

परंतु जो जीव सरलतापूर्वक मध्यस्थता से अपने दोष को देखता है उसे दोष के गुप्त अनुमोदन का अभाव होता है अतएव वह दोषभाव निराधार होकर, रस और शक्तिहीन होकर नष्ट हो जाता है। मुमुक्षु की भूमिका के सर्व प्रकार के दोष का नाश करने के लिये 'सरलता' सर्वोपरि शस्त्र है।

* सरलता से विरुद्ध असरलता के परिणाम, जीवों को अनेक प्रकार से उत्पन्न होते हैं, उनका स्वरूप भी समझने योग्य है। वक्रता, वचन और हावभावपूर्वक होनेवाली कृत्रिमता, दंभ, कुटिलता, माया, छल, कपट, हठाग्रह और जिद के परिणाम असरलता के द्योतक है। अतएव आत्मार्थी जीव को इन्हें अहितकारी जानकर त्याग ने योग्य है।

* असरलता का मूल पर्यायबुद्धि है। जिससे जीव के सर्व प्रकार के दोष अंकुरित हो जाते हैं। अतएव सर्वप्रकार के उद्यम से पर्यायबुद्धि को निरस्त करना योग्य है। त्रिकाली भगवान आत्मा की अधिकता चूक करके, वह महिमावंत होनेपर भी उसकी महिमा का लक्ष्य छोड़ करके, शुभाशुभ उदय को या एक समय की पर्याय को महत्त्व देकर उसका आश्रय करना, सो परमार्थ प्रत्ययी असरलता है।

* श्री जिनेन्द्रदेव के उपदेशानुसार श्रीगुरु द्वारा सत्-श्रवण की प्राप्ति होती है। तथापि जीव जिनआज्ञापर पैर रखकर चलता है अर्थात् उपयोग नहीं रखता, आज्ञा की अवगणना करता है, वैसे में सरलता कहाँ रही ?

* सत्शास्त्र में प्रयोजनवश निश्चय और व्यवहार में कथन करने की पद्धति है। उदाहरणार्थ : 'राग का कर्ता जीव नहीं, बल्कि पुद्गल है' तथा 'राग का कर्ता जीव है'-ये दोनों आगम- वचन हैं, और दोनों में आशय की अविरुद्धता है; जो सरल परिणामी जीव को सहजरूप से साधने में आती है। वह यथार्थरूप से दोनों वचनों को मुख्य-गौणतापूर्वकग्रहण करता है। परंतु मति की वक्रता के कारण जीव को विरोध भासित होता है। जिससे आत्महित साधने में आ नहीं सकता। जब कि सरल परिणामी जीव को ऐसा निश्चय वर्तता है कि : ज्ञानीपुरुष के वचन हमेशा पूर्वापर अविरुद्ध ही होते हैं।

* सत्संग की उपासना तथा सत्शास्त्रों का अध्ययन सरल परिणामों से करने की श्री जिनाज्ञा है। और तब ही सत्य का ग्रहण अथवा तत्त्व का ग्रहण सुलभता से होता है तथा जीव गुणग्राही बनता है।

अनंतकाल में, अनंतबार सत्पुरुष का योग मिला होनेपर भी उनकी पहचान नहीं होने के अनेक कारणों में मुख्य कारण, जीव की असरलता है। ओघसंज्ञा से ज्ञानीपुरुष की भक्ति और बहुमान करनेपर भी वंचनाबुद्धि रह जाती है उसमें सरलता की ही न्यूनता है, यो समझने योग्य है।

* चारों अनुयोगों में / जिनवाणी में अनुयोग अनुसार विषय व सिद्धांतो का प्रतिपादन है; तथापि सर्वत्र अध्यात्मतत्त्व प्रतिपादन करने का आशय रहा हुआ है। पारमार्थिक असरलता के कारण जीव को आगम और अध्यात्म में विरोध भासता है जिससे तात्पर्यरूप वीतरागता की प्राप्ति नहीं होती है। आत्महित के आशय को मुख्य रख करके, आगम-सिद्धांतों का ज्ञान कर्तव्य है तथा अध्यात्म तत्त्व की मुख्यता और आदर करने योग्य है।

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या ११ पर..)

(पृष्ठ संख्या १२से आगे...)

पूरी तरह इसी जन्ममें आपसे कहेंगे यों हमें हरिकी प्रेरणा हो ऐसा लगता है ।

आपने हमारे लिये जन्म धारण किया होगा, ऐसा लगता है । आप हमारे अथाह उपकारी हैं। आपने हमें अपनी इच्छाका सुख दिया है, इसके लिये हम नमस्कारके सिवाय दूसरा क्या बदला दें?

परंतु हमें लगता है कि हरि हमारे हाथसे आपको पराभक्ति दिलायेंगे; हरिके स्वरूपका ज्ञान करायेंगे, और इसे ही हम अपना बड़ा भाग्योदय मानेंगे । (पत्रांश - २५९)

*

ईश्वरेच्छा होगी तो प्रवृत्ति होगी; और उसे सुखदायक मान लेंगे; परन्तु मनमाने सत्संगके बिना कालक्षेप होना दुष्कर है । मोक्षकी अपेक्षा हमें संतकी चरणसमीपता बहुत प्रिय हैं; परन्तु उस हरिकी इच्छाके आगे हम दीन हैं । पुनः पुनः आपकी स्मृति होती है । (पत्रांश - २६९)

*

'भीख माँगकर गुजरान चलायेंगे परंतु खेद नहीं करेंगे; ज्ञानके अनंत आनंदके आगे वह दुःख तृण मात्र है' इस भावार्थका जो वचन लिखा है उस वचनको हमारा नमस्कार हो! ऐसा वचन सच्ची योग्यताके बिना निकलना संभव नहीं है । (पत्रांश - ३२२)

*

एक आत्मवार्तामें ही अविच्छिन्न काल रहे, ऐसे आप जैसे पुरुषके सत्संगके हम दास है । अत्यंत नम्रतासे हमारा चरण प्रत्ययी नमस्कार स्वीकार कीजिये । यही विनती ।

(पत्रांश - ४५३)

*

विनम्र अपील

" स्वानुभूतिप्रकाश" मासिक पत्रिका पिछले २५ सालोंसे पूज्य भाईश्री शशीभाई की प्रेरणासे हिन्दी एवं गुजरातीमें मुमुक्षुओंको भेट दी जाती है। जिसमें किसी न किसी पात्र जीवके आत्मकल्याणकी एकमात्र विशाल भावना निहित है।

यदि इस पत्रिका का आपके वहाँ या आपके आसपासके समुदायमें सद्उपयोग न होता हो अथवा संभवित अविनय या अशातना होती नज़र आये तो हमें इसकी जानकारी अवश्य दे या फिर आप पत्रिका एड्रेस समेत हमें वापिस भेज सकते हैं, ताकि हम उसे भेजना बंद कर सके। ट्रस्टकी इस व्यवस्थामें आपका सहयोग अपेक्षित है।

आभार

संपर्क: श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

श्री नीरव वोरा मो: ९८२५०५२९१३

वीतराग सत साहित्य प्रसारक ट्रस्ट से प्रकाशित विपुल सत साहित्यमें से निम्न साहित्य हाल में उपलब्ध हैं । कोई भी मुमुक्षु, संस्था एवं ग्रंथालयोंको इनमें से जिसकी भी आवश्यकता हो वे संपर्क करें ।
संपर्क: नीरव वोरा - ९८२५०५२९१३

(१) **'कहान रत्न सरिता' (भाग १,२)**
('परमागमसार' के विभिन्न वचनामृतों पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)

(२) **'सुविधि दर्शन'**
(पूज्य भाईश्री द्वारा लिखित 'सुविधि' लेख पर स्वयं उनके ही प्रवचन)

(३) **'राज हृदय' (भाग १,२)**
('श्रीमद राजचंद्र' ग्रंथ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके धारावाही प्रवचन)

(४) **'द्रव्य द्रष्टि प्रकाश'**
(पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजी की तत्त्वचर्चा एवं पत्रो)

(५) **'वचनामृत रहस्य'**
('बहिनश्रीके वचनामृत' पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके नाईरोबीमें हुए प्रवचन)

(६) **'छ ढाळा' प्रवचन (भाग १ से ३)**
('छ ढाळा' पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचन)

(७) **'प्रवचन सुधा' (भाग १ से ६)**
(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके 'प्रवचनसार' परमागम पर धारावाही प्रवचन)

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तकोना प्राप्ति स्थान

१) गुरु गौरव
पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानी स्मारक, सोनगढ़, सौराष्ट्र

२) श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
शशीप्रभु मार्ग, रूपाणी, भावनगर

आवश्यक सूचना

स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिका समयपर प्राप्ति हेतु जिन लोगोंको **(e-copy) - pdf.** की अगर आवश्यकता हो तो वे अपना रजिस्ट्रेशन करवाने हेतु निम्न नंबर पर संपर्क करे।
श्री नीरव वोरा - ९८२५०५२९१३

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2021-2023
RENEWED UPTO : 31/12/2023
R.N.I. NO. : 69847/98
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition :
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001